उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हम नातेदारी में उन व्यक्तियों को सम्मिलित करते हैं जिनसे हमारा सम्बन्ध वंशावली के आधार पर होता है और वंशावली सम्बन्ध परिवार से पैदा होते हैं एवं परिवार पर ही निर्भर हैं। ऐसे सम्बन्धों को समाज की स्वीकृति आवश्यक है। कभी-कभी प्राणीशास्त्रीय रूप से सम्बन्ध न होने पर भी यदि उन सम्बन्धों को समाज ने स्वीकार कर लिया है तो वे नातेदार माने जाते हैं। उदाहरण के लिए, गोद लिया हुआ पुत्र, पिता का असली पुत्र नहीं है, परन्तु उनके सम्बन्धों को समाज ने स्वीकार कर लिया है अतः वे एक-दूसरे के नातेदार माने जाते हैं। भारत में प्राचीन समय में विवाह के पूर्व ही किसी लड़की के होने वाला पुत्र या विवाह के बाद पति की स्वीकृति से दूसरे द्वारा उत्पन्न पुत्र, जिसे 'क्षेत्रज' कहते थे, भी नातेदारी में सम्मिलित था।

बहुपति विवाही टोडा जनजाति में बच्चे का प्राणीशास्त्रीय पिता कोई भी भाई हो सकता है, परन्तु सामाजिक रूप से वही भाई पिता माना जायेगा जिसने 'परसुतपिमी' संस्कार किया हो। यही बात हम देवर एवं साली विवाह में भी देख सकते हैं। देवर विवाह में एक पुरुष को अपने भाई की विधवा स्त्री से विवाह करने की स्वीकृति होती है। ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तानें मृत भाई की ही मानी जाती हैं। साली विवाह में एक व्यक्ति को अपनी मृत पत्नी की बहिन से विवाह करने की आज्ञा होती है और ऐसी बहिन को अपनी मृत बहिन का पद प्राप्त हो जाता है। अतः सामाजिक उद्देश्य के लिए रक्त या प्राणीशास्त्रीय सम्बन्ध नातेदारी में जरूरी नहीं है। इसका कारण यह है कि **नातेदारी एक सामाजिक तथ्य** (social fact) है जिसमें समाज की स्वीकृति महत्वपूर्ण है, सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति के नियम भिन्न-भिन्न समाजों व स्थानों पर भिन्न-भिन्न हैं। इसका कोई सर्वमान्य तरीका नहीं है। नातेदारों में हम रक्त सम्बन्धियों एवं विवाह सम्बन्धियों दोनों को सम्मिलित करते हैं। **रक्त सम्बन्धों को हम नातेदारी की आन्तरिक व्यवस्था कह सकते हैं तो विवाह सम्बन्धों को इसकी बाह्य व्यवस्था।**